Ranjana Yadav, Assistant Professor, Department of Philosophy, MMC, B.A. - Part II, Paper- Ethics (

''शान्ति के आदशं

Indian Ethics)

गीता का निष्काम कर्म योग''

मानव जीवन अनंत है, जिसका मूल एक अनादि परमशक्ति है और हम सभी उस परमशक्ति की अनवरत अभिव्यक्ति है। अतः मानव के कर्त्तव्य न केवल मानव के प्रति ही निर्धारित किये गये है वरन् इस संसार के सभी प्राणीमात्र के लिए भी है। प्राणीमात्र की सेवा ही ईश्वर सेवा है। सत्य एक ही है जिसको अनेक रुप में वर्णित किया जाता है।

एकं सत् विपाः बहुधा वदन्ति।

समस्त सृष्टि-विकास चेतन और पुद्गल के मिलन से होती है और ये दो मल तत्व वास्तव में एक सार्वभौम चेतना (पुरूषोत्तम) के ही दो रुप है। संसार इन्ही का कर्म स्वरुप है। सृष्टि-च्रक कर्म नियम से बंधा अनंत काल से चलता रहने वाला च्रक है। मानव भो इसो कम नियम स बधा ह। क्षमा, अस्तेय, शौच, घृत्ति, इन्द्रिय-निग्रह, विद्या उपार्जन, सत्य पालन आदि सभी मानव के सही कर्त्तव्यनिर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मनुष्य द्वारा किया गया प्रत्येक कर्म समस्त विश्व-ऊर्जा में स्पन्दन उत्पन्न करता है। चूंकि मनुष्य कर्म किये बिना रह नही सकता।

'नाहि काश्चित क्षणमपिजातं तिष्ठत्यं कर्मकृत। गीता 3/5

इसलिए कर्म करते हुए विश्वशांति रुपी लक्ष्य का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। शुभ कर्म मानव के अभ्युदय को निरंतर बढ़ाता है। कर्म ही मनुष्य को घोर दु:ख में डाल सकता है और यही कर्म उसे विष्णुपद पर बिठला सकता है।

सुरूत्वं च मुनित्वं च राजेन्द्रत्वं च लभेन्तर,

कर्मण च शिवत्वं च गणेशत्वं तथैव च,

कर्मणा च मुनीन्द्रत्वं च तपिस्वतम् स्वकर्मणा

स्वकर्मणा क्षात्रियत्व वैशयत्वं च स्वकर्मणा

(योगवशिष्ठ)''

मानव का मूल स्वभाव समय परिवर्तन के साथ भी पारिवर्तित नही होता। मानव का अधिकार वही तक सीमित है, जहाँ तक उसकी आवश्यकताएँ है। अतिरिक्त मूल्य का उपभोग हमारी आसुरी प्रवृत्तियों को जागृत करता है। स्वार्थपूर्ण दृष्टि से व्यक्ति या तो स्वयं अपना या फिर समाज का अहित करते हुए, अर्थसंचय करने में प्रयत्नशील हो जाता है जिसकी गीता निंदा करती है–

आशापाश शतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।

ईहन्तेकामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्।।

(भगवद्गीता अध्याय–16, श्लोक–12,)

गीता इस प्रकार की आसुरी प्रवृत्तियों से व्यक्ति को दूर रहने का संदेश देती है।

''भारत भूमि मूल रुप से कर्मभूमि है न की भोगभूमि'' गाँधी के कथन इस प्रकार की भोगवादी प्रवृत्ति के विरूद्ध संदेश है। भोगवादीता आज के

समाज की पहचान बनती जा रही है। इस प्रकार विषयों के प्रति भोग की प्रवृत्ति ही सर्वनाश को जन्म देती है। क्याकि विषयो के निरंतर चिन्तन से लिप्सा उत्पन्न होती है, लिप्सा से क्रमशः काम, क्रोध, मोह, स्मृति विभ्रम, बद्धि नाश और अंत मे सर्वनाश सम्भवतः उत्पन्न होते है –

ध्यायतो विषयान्पुषः संगस्तेषूजायते।

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधीडाभजायते।।

क्राधाात्भवति संमोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।

स्मृति भ्रंशाद्बद्धिनाशो बुद्धिनाशात्पणश्यति।।

भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 62-63

यहो आसक्ति की प्रवृत्ति मनुष्य पर मानसिक व शारीरिक दुर्बलताओ के कुप्रभाव को दिन-प्रति-दिन बढ़ा रही है। परिणामस्वरुप मनुष्य आध्यात्मिक संतोष व नैतिक मूल्यों को खोते जा रहा है आर उसक जीवन का सार बनते जा रहा है

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणंकृत्वा घृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनर्रागमनं कुतः।।

भातिक सुख की कामना ही नैतिकता क पतन का कारण है और आज मनुष्य ने स्वार्थी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए किये गये कर्मो को ही कर्त्तव्य का स्वरुप मान लिया है।

मनुष्य के अंदर की आसुरी वृत्तिया, इस प्रकार के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, दैवीय वृत्तियों को दबाने का प्रयास करने लगती है जिसके परिणामस्वरुप शुरूआत होती है मानव के द्वन्द्वपूर्ण जीवन की। इस कारणवश मानव, कर्मपथ से भटकने लगता है व सहि और गलत के मध्य अंतर को नही समझ पाता। सुख व शांति का प्रेमी इस प्रकार की मनोदशावश सुख व शांति के मूल अस्तित्व को नष्ट करने का प्रयास करने लगता है। आज का मानव समाज गाँधी के बतलाये सात सामाजिक पापो को जीवन का आदर्श मानने लगा है, जिसमें शामिल है –

- विवेक बिना भोग
- चरित्र बिना ज्ञान
- श्रम बिना सम्पत्ति
- नैतिकता बिना व्यापार
- त्याग बिना धर्म
- मानवता बिना विज्ञान
- सिद्धांत बिना राजनीति

इन्ही सांसारिक व सामाजिक पापो से युक्त प्रकृति के विरूद्ध युद्ध करते हुए, हमे संवेगो, भावनाओ और इच्छाओ का निर्दयतापूर्वक दमन न करते हुए इनका उन्नयन करना है। भावनाओ का दैवीकरण कर हम इसे सार्थक बना सकते है। यह संभव है कर्मो के सहो स्वरूप निर्धारण से।

गीता का उपदेश व्यक्ति के कर्त्तव्य निर्धारण तथा नैतिक आचरण का मार्गदर्शक है क्योंकि गीता समन्वित दृष्टि को अपनाने वाला जीवन-दर्शन है। इसमें ज्ञान और कर्म का, व्यक्ति और समाज का, सन्यास और भोग का नियत्व (आत्मा) और अनियतत्व (शरीर) का धर्म और नैतिकता का, ईश्वर और जीव का विलक्षण समन्वय है। जिसका आदर्श स्वरूप है 'निष्काम कर्म योग' मानव की शरीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रकृति के अनुकूल है। निष्काम कर्म की प्रेरक ईश्वरार्पण बुद्धि है जा आत्मसंयम पर जोर देती है। वास्तविक कर्त्ता तो परमात्मा है, जीव उसके हाथो में एक निमित मात्र है और परमात्मा द्वारा निश्चित कर्त्तव्य करने में ही उसका कल्याण है। कर्म, विचार, भावना और संकल्प इन सभी का समन्वय करके ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करके कर्म करना ही निष्काम कम का स्वरूप है। इसका उपदेश कर्म का त्याग नही कराता, बल्कि कर्म में त्याग सिखाता है।

अब प्रश्न उठता है कि कर्म में त्याग कैसे संभव है, इस पर प्रकाश डालते हुए गीता कहती है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुभूर्माते संगोऽस्त्वकर्मणि।

(गीता 2 / 47)

मन को वश में करते हुए स्वार्थपरता के भाव का त्याग करते हुए कर्म करना चाहिए। फल पर हमारा नियंत्रण नही होता है अपितु कर्म पर हमारा नियंत्रण होता है। फल की आकांक्षा का त्याग, कर्त्ताभाव का त्याग करते हुए हमे अपने कर्मो को ईश्वर के प्रति समर्पण भाव रखते हुए करना हो निष्काम कर्म याग है। हमें कर्म से सन्यास नही लेना है, अपितु कर्मफल की इच्छा से लेना है। गीता घोषणा करती है –

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

स सन्यासी च योगी च न निरग्निनं चाक्रियः।।

गोता 6/1

कर्मो के फल से अनासक्त योगी अथवा सन्यासी जो कुछ भी कार्य-सम्पादन करेगा, वह समाज तथा मानवता के लिए होगा। सन्यास सामाजिक कर्मो का परित्याग नही बल्कि वह तो पलायन है। त्याग और त्याग के लिए बल होने पर ही सच्चा सन्यास संभव है। गीता कहती है –

काम्यानां कमंणां न्यासः सन्यासं कवयो विदुः।

सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।। 18/2

समस्त सांसारिक दु:खो का मूल आसक्ति में निहित है और अनासक्ति समस्त दु:खो का अकेला निदान है। अनासक्त भाव को उत्पन्न करना ही कम योग है। अतः गीता में कर्म-सन्यास से कर्म योग को ऊँचा माना गया है।

सन्यासः कर्मयोगश्चनिःश्रयसकरावुभौ।

तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगोविशिष्यते। (गीता 2/50)

गीता बतलाती है कि ''युक्त आहार, युक्त विहार, कर्मों में युक्त चेष्ट, युक्त स्वप्न और युक्त जागरण वाला योग दुःख का नाशक होता है। गीता के शब्दों में

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेस्टस्यकर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। (गीता 6–/17)

गीता के निष्काम कर्म का आदर्श है – आत्म नियंत्रण, आत्मज्ञान व आत्मनुभुति। इन्द्रियों का शुद्धिकरण करते हुए, आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करते हुए, विश्वकल्याणकारी कार्यो का क्रियान्वयन ही निष्काम कर्म योगी का आदर्श है। ऐसे व्यक्ति को न तो कर्म दूषित करते है, और न इन्हें कर्म फल के प्रति कोई इच्छा ही रहती है। **(न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पहां।)**

निष्काम कर्म योगी सत्वगुण युक्त व अनासक्त भावयुक्त कर्म को करता है। गीता अज्ञानवश कर्मो के त्याग को तम गुण जन्य व परिणाम या शारीरिक कष्ट के भय से त्याग किये गये कर्म को रजगण युक्त बतलाती है। निष्काम कर्म से हम रज एव तम गुण पर नियंत्रण रख कर्मो को करते है। यह इन्द्रिय संग्रह पर नही इन्द्रिय निग्रह पर बल दता ह। गीता शरीर से इन्द्रियो को परे कहती है, इन्द्रियो से परे मन है, मन से परे बुद्धि आर जो बुद्धि से परे है वह

आत्मा है। इस प्रकार बुद्धि से परे आत्मा को जानते हुए और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके सभी प्रकार के भोगो या कामनाओं को नियंत्रित करने का प्रयास करते रहना चाहिए। जिस परमात्मा से सब भूतो की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सब जगत व्याप्त है उसको ध्यान मं रखत हए कर्त्तव्य का सपादन करके मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति आत्मसंतुष्ट व स्थिर बुद्धि वाला आदर्श पुरूष 'स्थितप्रज्ञ' बनता है, जिसका मन, दु:ख प्राप्ति में उद्वेग रहित व सुख प्राप्ति में उल्लासरहित रहता है। राग, भय, क्रोध को नियंत्रित करते हुए वह समभाव रखते हुए सभी जीवों को उसी प्रकार देखता है जैसा वह स्वयं को देखता है -

'आमातुले पयासु' (सूत्र कतांग 1-11-3)

स्थितप्रज्ञ द्वारा किये जाने वाले समस्त कर्म मानवता की सेवा मे समर्पित होते है। स्वधर्म का पालन करते हुए जन सेवा ही उसका सबसे बड़ा धर्म है। यहा स्वभाव को प्राथमिकता देने के पीछे गीता का मुख्य उद्देश्य कर्म के पाँच कारको के विषय मे सही ज्ञान कराना रहा है, जो इस प्रकार है।

(1) अधिष्ठान अर्थात शरीर

(2) कर्त्ता या जीवात्मा

(3) साधन या कारण (इन्द्रियादि)

(4) चेष्टाए

(5) दवम जो मनुष्य के समस्त पूर्वजन्म की अर्जित फल की बीज रुप उपस्थिति है।

स्वभाव और गुण के अनुकूल कर्म प्राणोत्सर्ग और प्रतिकूल कर्म भयावह व घातक होते है न केवल व्यक्ति के लिए अपितु सम्पूर्ण समाज के लिए। किसी भी एक क्षेत्र में कुशल व्यक्ति को किसी दुसरे विपरीत क्षेत्र में लगा देने स वह निश्चित ही समाज के लिए हानिकारक होगा। इसी कारण गीता गुण और कर्म के आधार पर किया गया सामाजिक-विभाजन आर स्वधर्म के पालन को श्रेष्ठ स्वीकारती है।

''चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म विभागशः।

तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ।। (4 / 13)

स्वधर्म का पालन करके ही व्यक्ति सामाजिक उन्नति में योगदान कर सकता है। व्यक्ति का स्वधर्म ही उसका वास्तविक कर्त्तव्य है -

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधमांत्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्म निधनंश्रेयः परधर्मो भयावहः।। (गीता- 3 / 35)

स्वधर्म का पालन करते हुए जन सेवा ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है। संसार उस परम पिता की अभिव्यक्ति है, इस भाव को धारण करते हुए अपने कर्मो का ईश्वर को समर्पण ही सबसे बड़ी भक्ति है। लाकसगह क

भाव स किया गया काय समाज क साथ-साथ व्यक्ति क लिए भो लाभदायक हाता ह। वस्तत: यहो कम व्यक्ति का इश्वर क करोब ल जाता ह। निष्काम कर्म योग में व्यक्ति स्थितप्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात **'बसुधैवकुटुम्बकम्'** की भावना से 'लोकसंग्रह' में लग जाते है। स्वयं ईश्वर भी जिनके लिए कुछ भी प्राप्त या अप्राप्त नहीं। वह भी लोककल्याण के लिए मानव शरीर धारण करता है व अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है।

'यदा यदा ही धर्मस्थग्लानिर्भति भारत:।
अभ्युत्था नमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्।
धर्म संस्थपनार्पय सम्भवामि युगे-युगे।। (4/ 7-8)

सम्पूर्ण भूतो के हित में लगा रहने वाला उद्योगी, निष्कामी ईश्वर को ही प्राप्त करता है। **'ते प्राप्तुवन्ति मायेव सर्वभूतहिते रत:।'**

गीता अन्याय का विरोध वासन के वशीभूत या अज्ञान के वशीभूत होकर नहीं करने का उपदेश देती है क्योंकि इससे शोक व अशांति उत्पन्न होती है। लोक कल्याण को ध्यान में रखते हुए अन्याय के विरुद्ध युद्ध ही शान्ति व समृद्धि का मार्ग है। सामर्थ्य के अनुसार समाज के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वहन ही इसका सार है। यही कर्मो की कुशलता है, जो एक साधना व योग है। **'योग: कर्मसु कौशलम्।'**

मनुष्य को कर्मो में कुशलता वैयक्ति कामना से नहीं बल्कि विश्वात्मा की कामना से कर्मों को करने से प्राप्त होती है। ऐसे कर्मों के संचालन से सिद्धि प्राप्त होती है- **स्वे स्वे कर्मेव्याभिरत संसिद्ध लभते नरः। गीता (18/45)।**

निष्काम कर्म योग हमें न केवल कर्मयोगी बनाता है बल्कि ज्ञानयोगी के साथ भक्तयोगी भी बनाता है। व्यक्ति की पृष्ठभूमि में सारा संसार आ जाता है जो एक आध्यात्मिक एकता के सूत्र में बंधा हुआ है। सच्चा योगी 'सर्वभूत हितरत' होता है।

निष्काम कर्म का मार्ग दुष्कर एवं श्रम साध्य अवश्य है, किन्तु इसको अस्वीकार करना सर्वथा अयथार्थ है। निष्काम कर्म के मार्ग को प्रशस्त कर, हम स्वधर्म का पालन करते हुए मानव समुदाय के समक्ष अपूर्व साधन प्रस्तुत कर शान्ति व समृद्धि की एक नई रुप-रेखा प्रस्तुत कर सकते है।

शांति व समृद्धि का नीतिशास्त्र ज्ञान, कर्म और प्रेम की तिपाई पर टिका है। गीता व्यक्ति को सम्पूर्ण मानवता के साथ जोड़ने की दिशा में एक क्रान्ति है, आसक्ति से उद्भूत समस्त स्वार्थो को समाप्त करके व्यक्ति को सम्प्र्ण मानवता के साथ जोड़ने का प्रयास करती है। यह सामाजिक संबंधो के मानवीकरण का आदर्श है। (H.S. Sinha, Communism & Gita, Concept Publishing Company, Delhi, 1979, P-44)

<u>संदर्भ-सूची</u> :-

राधाकृष्णन सर्वपल्ली	:	भगवद्गीता, अनुवादक-विराज, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, चौथा संस्करण, 1969
राधाकृष्णन सर्वपल्ली	:	इंडियन फिलॉस्फी, खंड 1 तथा 2, जॉर्ज एलेन एंड अनविन, 1941, लंदन।
गीता प्रेस	:	भगवद्गीता, एटीन्थ एडीसन, 1966
हिरियान्ना, एम० प्रो०	:	भारतीय दर्शन की रुपरेखा
डॉ० जटाशंकर	:	वेदान्ती समाजवाद, समाज धर्म एवं दर्शन,

177-सी, टैगोर टाउन,

इलाहाबाद, 1999, पृ० 50-55

डॉ० हृदय नारायण मिश्र, : नीतिशास्त्र की भूमिका,

डॉ० जमुआ प्रसाद अवस्थी हरियाना साहित्य अकादमी

चण्डीगढ़, 1988, पृ० 402-411

RANJANA YADAV
ASSISTANT PROFESSOR
MAGADH MAHILA COLLEGE
PATNA UNIVERSITY,
PATNA- 800001